

9

.





# रवीन्द्र-प्रद्य-कथा

२५५ का प्रथम अंक की प्रतीक व समाप्त व दिनांक का प्रकाश ]

प्रकाशक

डॉ० मोतीलाल मेनारिया

संचालक

राजस्थान साहित्य अकादमी

उदयपुर ।

प्रथम संस्करण

१९६१

मूल्य

एक रुपया पचास नये पैसे

मुद्रक

जगन्नाथ यादव

अध्यक्ष

केशव चार्ट प्रिण्टर्स

## प्रकाशकीय निवेदन

\*

स्व० रवीन्द्रनाथ टागुर की कृतियाँ आज भारतीय वाङ्मय में ही नहीं, अपितु विश्व-साहित्य में रामादरणीय हैं। विभिन्न भाषाओं में उनके अनुवाद हुए हैं। इतना ही नहीं, कई विद्या-व्यसनी तो रवीन्द्र, शरत् और चंकिम का साहित्य समझ पाने के लिये ही बंगला सीखते हुए देखे गये हैं।

साहित्यकार चाहे किमी भी भाषा में रचना करे, वह साहित्य मात्र उसी भाषा-भाषी क्षेत्र के लिये न होकर समूची मानवता के लिये होता है। इसीलिये उसकी आशय को जन-जन तक पहुँचाने का दायित्व निभाया जाता है और इसीलिये भाषा और लिपि के एकीकरण की बात सोची जाती है।

राजस्थान साहित्य अकादमी ने रवीन्द्र शताब्दी-समारोह के अवसर पर यह आवश्यक और उपयुक्त समझा कि विश्व-कवि की कुछ रचनाओं का राजस्थानी-अनुवाद प्रकाशित किया जाय प्रस्तुत प्रकाशन उसी निश्चय की क्रियान्विति है। अनुवाद या रूपान्तर का काम वस्तुतः बड़ा कठिन है भाषाओं का जन्म और विकास वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक आधारों पर होता है। अतः एक भाषा की अभिव्यंजना किसी दूसरी भाषा में पूर्णरूपेण समाहित नहीं हो पाती। फिर भी श्रेष्ठ रचनाओं के अनुवाद किये जाने के महत्त्व से असहमति प्रकट नहीं की जा सकती।

प्रस्तुत प्रकाशन अपने उद्देश्य में कितना सफल रहा है, इस मूल्यांकन की अपेक्षा हमसे नहीं, पाठकों से ही की जानी चाहिये।

डॉ० मोतीलाल मेनारिया  
संचालक,  
राजस्थान साहित्य अकादमी,  
उदयपुर।





## मदनगोपाल शर्मा

जनम-स्थान : सामोद (जयपुर)  
 जन्म-तिथि : २० मई १९२६ ई०

प्रस्तुत 'पद्य-कथा' के प्रस्तोता-कवि मदनगोपाल शर्मा को काव्य-प्रणयन की प्रेरणा अपने किशोर-काल से ही रही है। राष्ट्रकर्मो परिवार से सम्बद्ध राजनीतिक विरासत के घूमित धांगन को छोड़कर वकालत और प्रशासकीय अनुभव की पंक्तों पलियों से गुज़ारते हुए हर्ष और अर्षय से अनुप्राणित इस साहित्य-पथिक को अन्ततः वीणापाणि की स्वरछाया में ही विश्रान्ति मिल सकी।

रग और व्यंग के धनी इस शिल्पी की रचनाओं में मर्मंगीति और समाजनीति दोनों के स्वर मुखर रहे हैं। प्रबंध-पटुता कवि की अपनी विशिष्टता रही है। रस-सृष्टा के साथ ही साथ वह मर्मदृष्टा भी है। प्रालोचना के क्षेत्र में भी उनसे घनेक प्रारण हैं। उनके अनेकों गीत-वार्ताएँ और लगभग डेढ़ दर्जन गीति-नाट्य महाारावाणी के विविध केन्द्रों से प्रसारित हो चुके हैं। अपने काव्य-संदर्भों-स्वर्ण-विहान, मुमनों को मुसबान, गीति बितान और उन्मुक्त उडान में कवि की प्रेरणा ने काव्य की विविध सितियों को स्पष्ट किया है। कवि के रूप में हिन्दी और राजस्थानी का समान वरदान उन्हें प्राप्त है। वर्तमान में शर्माजी राजस्थान-कलेज में हिन्दी प्राध्यापक हैं और राजस्थान के सन्त साहित्य पर शोधकार्य में रत हैं।

पता—रामकुटीर, गोपालपुरा,  
 दुर्गागुप्त रोड, जयपुर।





## दो शब्द



प्रस्तुत पुस्तक गुरुदेव रवींद्रनाथ की उन्नीस कथात्मक कविताओं का अनुवाद है। इन कविताओं का चयन मैंने उनके काव्य-संग्रह 'संचयिता' और 'कथा-कहानी' (कथा और कहानी) से किया है। चयन में कोई विशेष दृष्टिकोण नहीं रहा। फिर भी कविताओं की सरलता और लोकप्रियता का ध्यान मैंने प्रबल रखा है। यद्यपि इस संग्रह की एक कविता 'दो दिन' (दो काल) कथात्मक नहीं है तो भी उसकी सरलता और काव्य सौष्ठव के कारण मैं उसके अनुवाद का लोभ संवरण नहीं कर सका हूँ।

अनुवाद में मूल के भाव और तथ्य के अधिकतम सादृश्य का निर्वाह ही मेरा मुख्य लक्ष्य रहा है। शब्द रूपी व्याकरण के नियमों में कवि को (विशेषतः अनुवाद कार्य में) उदार स्वतंत्रता देने का मैं सदा से पक्षपाती रहा हूँ। तद्विषयक पक्ष समर्थन का उचित अवसर यह नहीं है। अतः आत्म निवेदन से ही यहीं संतोष माने लेता हूँ।

इस अनुवाद का मुख्य ध्येय किशनगढ़ के मेरे प्रसिद्ध मित्र डा० सत्यकुमार बोस को है। वस्तुतः यह उन्हीं के आग्रह और अनुग्रह का प्रसाद है।





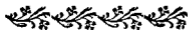


## अभिसार



संन्यासी उपगुप्त,  
मथुरापुरी प्राचीर तले एकदा थे सुप्त ।  
हो गए ये नगरी के दीप वायु-विपित  
हो चुके थे पौर भवनों के द्वार विजड़ित  
नक्षत्र निशीथ के,  
श्रावण-गगन-घन-मेघाच्छन्न हुए सुप्त ।  
नूपुर शिजित पद,  
भाकर किसी का लगा संन्यासी के वक्ष में ।  
संन्यासी प्रवर एकाएक चौक कर जागे  
स्वप्न जड़िमा मराल पलक तटों से भागे  
अध्याचित आकस्मिक  
दीपालोक हो उठा असह्य युग-चक्षु में ।

नगरी की नत्तंकी,  
बली अभिसार हेतु यौवन मदंगजा ।  
धंग पर धंवल या शोभित मुनील वर्ण  
रन-भुन रव बजते थे स्वर्ण-माभरण  
पदाघात होते ही,  
रुक गई वासवदत्ता रूपसी धनंगजा ॥



आगे कर दीप को,  
 देखी गरुडिका ने यति की नवीन गौर कांति ।  
 सोम्य स्मिति व्याप्त गौर वरुण बदन में  
 करुणा-किरण की पुलक थी नयन में  
 शुभ्र मण्य भाल पर,  
 शोभित थी शुभ्र शरदेन्दु की विमल सांति ।

कहती है रमणी,  
 गद्गद कंठ, नयनों में मुख लज्जा है ।  
 क्षमा अपराध मेरा संन्यासी कुमार हो  
 कर दें पवित्र गृह, करुणा अपार हो ।  
 यह धरणी का तल,  
 कठिन कठोर यह, आपकी न सज्जा है ।'

'अभि लावण्य प्रतिभे ।  
 आपह तुम्हारा अभी मान नहीं पाएंगे  
 समय हमारा अभी हुआ नहीं गरुडिके  
 जहाँ तुम्हें जाना, अभी जाओ वहाँ धनिके  
 समय आएगा तो,  
 आप ही तुम्हारे पास हम चले आएंगे'

अकस्मात् भंभा ने,  
 तड़ित शिखा से किया नम्र में विपुल लाल ।  
 रम्या कोमलोगी वह काँप उठी पास से  
 प्रलय का संत मंत्रा क्षुब्ध वातास में  
 घोर परिहास से  
 वज्र नम्र में विदट कर उठा मूटहास



उसी वषं चैत्र के  
 मंदिर मधुमास की सुहानी एक संध्या थी ।  
 जबकि वातास धूमता था मंदगंधाकुल  
 पथ पर छायाओं ने धारण किए मुकुल  
 राजवन में सिले—  
 पाहल वक्रुल, प्रमुदित निशिगंधा थी ।

दूर से पवन पर  
 बह कर आ रहे हैं स्वर मुरली के मंद्र ।  
 जनहीन नगरी थी, नगर निवासी सब  
 गए मधुवन में मनाने को ये पुष्पोत्सव  
 धून्य नगरी निहार,  
 हंस उठा मंद मंद पूणिमा का शुभ चंद्र ।

जनहीन पथ में,  
 कौन चांदनी में चला जाता यह यात्री है ?  
 शीश पर छाया तरु वीथिका का है प्रसार  
 कोकिल की कूक शूँज उठती है धार-वार  
 इतने दिनों के बाद,  
 योगी क्या तुम्हारी घाई अभिसार रात्रि है ?

नगरी को त्याग कर  
 दंडी चले एकांत प्राचीर-बाह्य प्रांत में ।  
 सड़े हुए आकर ये परिखा-पछाह में  
 धाम्र-उपवन की सघन श्याम छाह में  
 कौन बह रमणी,  
 पड़ी एकाकिति यों है उनके पदांत में ?



दाहण मगूरिका  
 रोग से भरे थे उत युवती के सर्वाङ्ग  
 रोग कालिमा से तन उमका था परिच्छन्न  
 जानकर उसको घस्पर्श घृण्य शंकापत्र  
 याहर नगर से  
 फेंका प्रजागण ने समझ उसे विकलांग ॥

बैठ गए संन्यासी  
 उठा लिया उसका गलित शिर अद्भु में  
 छोड़ा कुछ जल शुष्क युगल अघर पर  
 शीश पर पढ़ दिए फिर कुछ मंत्र-स्वर  
 निज शुचि कर से  
 गात किये लिप्त शीत चंदन के पंक में

भरते मुकुल हैं  
 कूजते हैं कोकिल, है ज्योत्स्नामत्त यामिनी  
 'किसने बचाए मेरे प्राण !' पूछा रोगी ने  
 'आया अभिसार हेतु आज'-कहा योगी ने  
 'आज ही की रात्रि में,  
 समय हुआ है वासवदत्ता महामागिनी ।'

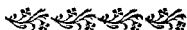
## होली का खेल



[ राजस्थान ]

पत्र दिया है पठान जालिम केशरखां को ।  
कंधून से भूनाग राजा की रानी ने,  
'पुद्द-लिप्ता का मियां होगया क्या अन्त है ?  
बोता जाता देखते ही देखते बसंत है  
होली खेलने की मेरी इच्छा, भ्रात्रो संन्य ले  
संन्य जो कि सुविख्यात दुर्जय दुरंत है'  
पुद्द-एक हार कर कोटा नगर त्याग कर  
कंधून से खत भेजा राजपूतनी ने ।

पत्र पढ़ केशरखां हंस पड़ा खुल कर  
आन्तरिक सुख से मरोड़ा निज भूँछों को  
देख एक पगड़ी सुरंगी, रखी सिर पर  
सुरमा भी घांजा फिर घांतों में हुलसकर  
हाथ में रुमाल लिया भीनी-भीनी गंध भरा  
बार-बार फटकारा शक्ती को उमंगकर  
सोचकर, रंग रानी खेलेगी पठान संग  
वेशर ने खुत हो मरोड़ा निज भूँछों को ।



फागुन महीना है, वकुल-वन-वीथिका में  
 दक्षिण पवन मतवाला सरसावा है  
 मंजरित धाज धाम्रवन में हुआ मुकुल  
 धाज क्यों किसी को सुनने लगे भ्रमर-कुल  
 गुन-गुन जाने मन ही मन क्या गुनते से  
 गुंजरित भृङ्ग धूमते स्वच्छंद गंधाकुल  
 धाज दल का दल पठान सेव्य मधुमत्त  
 कैथूनपुरी में होली खेलने को आया है ।

वह धी संध्याकाल की सुहानी भुटपुट बेला  
 कैथूनपुरी के रमणीय राजवन में  
 धाकर खड़े हुए पठान उपवन में  
 छेड़ती है बंसी राग मुल्तानी धुन में  
 एक लो मुदस तब दासिपा रानी की पाई  
 होली खेलने के लिए हो प्रसन्न मन में  
 भुरमुट मोट में ये रोझा-रोझा झंझता-सा  
 झूलता था राग-रंगारवि भी गगन में ।

पग की धमक, धूम-धूम जाते धापरे हैं  
 उड़े जाते छोड़ने हैं दक्षिण पवन में  
 दाहिने हाथों में सब धासी लिए फाग की  
 झूलती कटि में विचकारी रंग-राग की  
 धनक-भुनक इठलानो हुई धलती है  
 धारें हाथ जल धरी धारी है गुलाब की  
 उड़ रहे छोड़ने हैं, बाँकी धाधाधियों का  
 उभड़ रहा है दल धात्र रात्रवन में ।

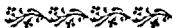


भाँसैं नचा-नचा, मंद मुसका, प्रसन्न मन  
 कहते हैं ऐसे पास आकर केशरखाँ  
 'सुन्दरि ! अनेक युद्धों में बची हमारी जान  
 आज के प्रणय-द्वन्द्व में न पर बचेंगे प्राण !'  
 सुन यह बात, अट्टहास में बदल गई  
 रानी की सहेलियों की मंद-मंद मुसकान  
 करते सलाम लाल पाग हिला झुक-झुक  
 सिर तक दाया हाथ लाकर केशरखाँ ।

गुरू हुई घोर मचामची फिर फागुन की  
 उड़ रहा है अवीर लाल संध्याकाश में  
 नया रंग चटक उठा बकूल फूल में  
 रक्त रेणु भरि पड़ती है तन्मूल में  
 सुन क्षत्रियों का अट्टहास, पक्षियों का  
 कूजन सहम, पड़ गया, भय भूल में  
 अरण्य कुजमटका के राशि-राशि धन धे  
 प्राण कहीं से फिर-फिर संध्याकाश में ?

केशरखाँ क्षुब्ध मन ही मन है सोच रहा  
 चढ़ता नहीं है नयनों में उन्माद क्यों ?  
 उच्छ्वास बस में नहीं हैं क्यों उमड़ते  
 कंठ क्यों कर्ण-कटु सा है रव करते  
 रङ्ग की उमङ्ग छकी इन बाँकी नारियों के  
 नूपुर भी आज कैसे बेमुरे से बजते  
 घाई हुई है क्यों एक उन्मत्त विवशना तो  
 घेरे लेता हृदय को खिन्न भवसाइ क्यों ?





धरस्मात् गङ्ग में मुदूर तक गङ्ग-गङ्ग  
 भूँज उठा मुपङ्ग नगाडा बङ्ग-धोव मा  
 निर्मल आकाश में था राशि मुखा पङ्ग  
 राङ्गों से फिर उठे राङ्ग गङ्ग-गङ्ग  
 राङ्गनाई ने भी पीर डार पर गंभीर  
 स्वर में बजाना गुरु विद्या राग कागडा  
 लमावून कुंज के निबिड़ तर मन में  
 भूँज उठा मुपङ्ग नगाडा बङ्ग-धोव गा ।

पन में बहावा वायु सहरो में छाड़नों को  
 पनक भरवते हो मान दिग् पापरे  
 धरस्मात् स्थाग कर स्वेण परिधानो को  
 देर निरा श्री-श्री दूर श्री-श्री ने पङ्गनों को  
 स्त्रियों में पुरय प्रकटे, ज्यों निबिड़े हों मरे  
 लोह पुष्प दुल्लुहों के सनित बिडानों की  
 धरा में ही संवदन् प्रातः के स्वन जैसे  
 उड़ रा, छोड़ने की मुख परे धारने ।

जिन पर से पङ्गन वैदुनदुगे में धारा  
 लोट कर जा न कहे दिग् उप पर न  
 पङ्गन की रात में निरुंज के दिग्ग के  
 कप निह जाङ्गल दिग्गन मरी राङ्ग के  
 रातो के हानो केकरवर्ण का संघ हुआ  
 वैदुनदुगे के स्फूर्तिव  
 जिन पर से पङ्गन  
 लोट कर दिग् उप पर

## प्रण-रक्षा



•

‘देखो आ रहे हैं वे मरहट्टे दस्युगण  
करो सब युद्ध-साज’  
धजमेरगढ़ में कहते पुकार कर  
दुर्गेश दुमराज  
दोपहरी के समय हर कोई अपने  
घर में रहा था सेक रोटी जब ज्वार की  
तभी दुर्ग तोरण में नगाड़े की गूँज सुन  
बाहर आगया छोड़ चिता घर-बार की  
चढ़ के प्राचीर पर देखा तब सवने  
दक्षिण में दूर पर  
मराठों के घोड़ों से उड़ रही धूल है  
नभ में उमड़ कर  
‘मराठों का टिड्डीदल हो कृपाण-बह्नि में  
यहीं भस्मसात आज  
‘भुलस-भुलस भरे लौट कर जा न सके’  
गरजा यों दुमराज ।

दूत मारवाड़ से घाया घोर बोला यों  
व्यर्थ यह सैन्य साज



देखो, यह देखो, यह प्रभु का आदेश है  
 दुर्गेश दुमराज !  
 सिधिया है आ रहा, साय में है उसके  
 पुद्द-विद्या-कुशल फिरंगी एक सेनापति  
 ससम्मान सौंप दो उसे तुम दुर्ग को  
 आज यही आज्ञा है स्वामी की तुम्हारे प्रति  
 हुई विजय-श्री है विमुख संयोग से  
 आज विजयसिंह पर,  
 सौंपना ही होगा आज भ्रजमेरदुर्ग को  
 बिना ही किए समर'  
 'स्वामी के निदेश में, धीर के निवेश में  
 हो गया विरोध आज'  
 दीर्घ निश्वास ले कहते विवश से  
 दुर्गेश दुमराज

मारवाड़ दूत ने घोषणा की सत्वर  
 'छोड़ो-छोड़ो रणसाज !'  
 पत्थर की मूर्ति सा खड़ा का खड़ा ही रहा  
 किन्तु स्तब्ध दुमराज  
 जाती-जाती बेला में सांध्यम्लान सुनसान  
 धू-धू करता है, दूर-दूर चरती हैं धेनु  
 तरुतल छाया में सकण्ड ख से  
 बजा रहे कुछ ग्वाल-बाल हैं विकल वेशु  
 जब मैंने दुर्ग का भार लिया तब धा  
 प्रण किया मन में  
 सौंपूंगा न शत्रु को दुर्ग यह, जब तक  
 प्राण शेष तन में



प्रभु के आदेश से हाथ उसी व्रत को  
तोड़ना पड़ेगा आज  
यही सोच-सोच कर छोड़ते हैं उच्छ्वास  
दुर्गेश दुमराज

राजपूत सेना ने त्याग दिया शोम और  
सज्जा से समर-सात्र  
नोरम राड़े रहे किंतु दुर्ग द्वार में  
दुर्गेश दुमराज  
गैरिक वसन धार, छवि विश्वरा सपार  
उतर रही है संध्या पश्चिमी मंशान पार  
मराठों का मैन्य दत्त उड़ा धूम के बादल  
घाकर सप्रद लभी मड़ा हुआ दुर्ग द्वार  
'बोन वह मोया है पास वहाँ द्वार के  
उठो, उठो, रोलो द्वार,  
मुनता नहीं है क्या ?' प्राणहीन देह हाथ  
बपों कर मुने पुकार ?  
मासिक के कर्म में और वीर धर्म में  
मिटाने विरोध सात्र  
अमर हुआ है तत्र प्राण दुर्ग द्वार में  
दुर्गेश दुमराज

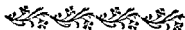
## ब्राह्मण



[ छांदोग्योपनिषद् ४ प्रपाठक ४ अध्याय ]



वन की तमच्छाया में सरस्वती तट पर  
अस्त हो गया है अर्थात् बलांत सांध्य दिनकर  
शीश पर समिधा का भार कर आहरण  
आश्रम को लौटे आ रहे हैं ऋषि पुत्रगण  
लाए घेर वन से तपोवन में शिष्य जन  
स्निग्ध शांत आँखों वाली अर्थात् होमधेनुगण  
संध्या स्नान आदि निस्व कर्म कर समापन  
सम्मिलित सबने ग्रहण किया निजासन  
गोतम के चारों ओर कुटी के आंगन में  
बैठ गए होमाग्नि के ज्योति-विकीरण में  
ऊपर, अनंत शून्य निभृत विजन में  
ध्यान मग्न महा शांति छाई है गगन में  
सारी तारकावली है बेठी कीतूहल स्तब्ध  
शिष्य मंडली की भाँति मौन और निश्शब्द  
भंगकर मौन, बोले गोतम, हो सावधान  
'शस्त्र, कहत , ई' ब्रह्मविद्या, करो प्रवधान'  
ठीक तभी निज कर सम्पुट में अर्ध से



तद्वरा बालक आया कुटी के प्रांगण में  
 नमित हो, ऋषि के चरण-पद्म पर से  
 बोला, पिक-वड से सुधा से स्निग्ध स्वर से  
 'भगवान् ! ब्रह्म-विद्या शिक्षा अभिलाषी हूँ  
 आया हूँ दीक्षा के हेतु, कुरु-क्षेत्र वासी हूँ  
 सत्यकाम नाम मेरा ।' सुन स्मित हास से  
 ब्रह्मर्षि ने कहा स्नेह-स्निग्ध शांतलास से  
 'कुशल हो सौम्य, गोत्र जाति क्या तुम्हारी है  
 क्योंकि मात्र विप्र ब्रह्म-विद्या अधिकारी है'  
 बालक यों बोला मन में शंका सी मानता  
 'क्षमा करें भगवान् ! गोत्र नहीं जानता  
 माँ से पूछ आऊँ कल, मिले यदि अनुमति'  
 यह कह ऋषि-चरणों में करके प्रणति  
 चला गया सत्यकाम घनवनवीथी से  
 पैदल हो पार छोण स्वच्छ सरस्वती से  
 बालू के किनारे सुप्ति-मौन ग्राम में निविष्ट  
 सत्यकाम जननी की कुटी में हृषा प्रविष्ट  
 छोण सांध्य-दीप का घर में उजाला था  
 माँ थी प्रतीक्षा में द्वारे सड़ी, नाम ज्वाला था  
 उसे देख लगा लिया वक्ष से विह्वल हो  
 घूम कर भाल, बोली 'क्षेम हो, कुशल हो'  
 छूटते ही पूछा सत्यकाम ने, 'माँ भविराम  
 कहो किस वंश में मैं जन्मा, क्या पिता का नाम ?  
 ब्रह्म-ज्ञान हेतु प्राज्ञ गौतम ऋषि के द्वार  
 गया, तो वे बोले यह द्विज का ही अधिकार  
 माता क्या हमारा गोत्र बोली, भट बोली न

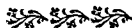
चुप क्यों हो, कहती नहीं क्यों ? मुख खोलो न'  
 मुन यह जननी ने, कहा नत मुख से  
 यौवन में वत्स घोर दारिद्र्य के दुख से  
 घर-घर परिचर्या की, तुम्हें पाया है  
 गीले में सो सदा, तुम्हें मूखे में मुलाया है  
 जन्म लिया तूने महँहीना माँ की गोद में  
 पाकर मुझे सदा मानती धाई मोद में  
 जानती नहीं मैं तेरा गौत्र या पिता का नाम  
 मैं हूँ तेरी जननी, तू मेरा गुत है लताम'  
 घगले ही दिवस तपोवन में भवदात  
 तर-शिलरों पर जगा गया-नया प्रभात  
 तापस किशोर सय अप्रतिम ओ' घशोक  
 शिशिर-मुस्निग्ध जैसे बालारण का बालोक  
 भस्त्रि-भस्त्रुघोत कांति जैसे नव-पुष्प-शुद्ध  
 जिनकी है प्रातस्नात स्निग्ध छवि, आर्द्र जटा  
 सौम्य मूर्ति है जो, दीप्ति जिनकी है वाया में  
 गीतम को घेर, बेटे वृद्ध-वट-छाया में  
 ध्वनित विहगवृन्द का है कलरव गान  
 मधुप गुंजन गीति, रम्य जलकल तान  
 सग-संग मूँज रहे युवाकंठ से मधुर  
 पात सामगीति के गर्भोर सम्मिलित सुर  
 ठीक ऐसे समय प्रविष्ट हृद्गा सरदबाम  
 नत हो, श्रुति के पदपत्र मे किया प्रणाम  
 निरछल नयन मिला, बैठ गया चुरचार  
 आशिष आचार्य ने दे प्रश्न किया तब प्राग  
 'गौत्र क्या तुम्हारा है हे सौम्यप्रिददर्शन ?'



उठाकर भाल, कहा बालक ने, भगवन् !  
 पूछा जननी से, यही उसने बताया है  
 बहु परिचर्या से मैंने तुम्हे पाया है  
 जनमा तू भृश हीना जननी की गोद में  
 पाकर मुझे सदा मनाती आई मोद में  
 गोत्र जानती न तेरा ।' सुन यह वार्त्ता  
 छात्रों ने शुरू की घुमपुस अपनी कथा  
 मधुचक्र में ज्यों लोष्ठपात से हो हलचल  
 पतिगों की भांति सब हुये विस्मय-विकल  
 निलंज्ज अनार्य का विलोक यह अहंकार  
 कोई हँसता है कोई दे रहा है धिक्कार  
 आसन को त्याग, मुनि खड़े हुए तत्क्षण  
 फंला निज बाहु, किया बालक का आर्लगन  
 बोले—'तुम अब्राह्मण नहीं हो कदापि तात  
 तुम द्विजोत्तम वत्स, तुम सत्यकुल जात'



## राज-विचार



•

विप्र बोले, 'स्त्री थी मेरी रात जिस घर में  
चोर वहाँ पहुँचा सतीत्व नष्ट करने  
पकड़ लिया है उसे, दूँ क्या दंड, भाजा हो ?'  
'मृत्यु' बोले उससे रतन रावराजा यों ।

भाग्य भाया चर, बोला, 'चोर तो ये युवराज-  
बाँध उन्हें विप्र ने सुबह फाट डाला भाज  
साया है पकड़ उस विप्र को, क्या सजा हो ?'  
'मुक्ति' बोले उससे रतन रावराजा यों ।

•

## नकलगढ़



[ राजस्थान ]



करूँगा न जल-स्पर्श चित्तोड़ राणा का प्रण ।  
'बूंदी दुर्ग पृथ्वी पर रहेगा यावत् क्षण ॥  
'कैसी प्रतिज्ञा है यह, मानव असाध्य काज ।  
कैसे सिद्ध होगा आज' कहते हैं मंत्रीगण ।  
राणा ने कहा 'असाध्य कार्य तो साधूँगा प्रण ॥'

बूंदी दुर्ग योजन चित्तोड़ से है तीन दूर ।  
वहाँ हाड़ावंशी राजपूत सब महाशूर ॥  
हामू दुर्गरक्षक हैं जानते नहीं जो भय ।  
जिसका प्रमाण सब राणा को मिला भरपूर ।  
हाड़ावंशी बूंदी दुर्ग योजन है तीन दूर ॥

मंत्री बोले, 'कीशल से, सगा कर सारी रात ।  
बूंदी का कृत्रिम दुर्ग गढ़ दो,' होते ही प्रात ॥



आकर स्वयं राणा कर देंगे घूलिसाव,  
 नहीं तो नया बात के लिये करेंगे आत्मघात ।  
 मंत्री ने कृत्रिम दुर्ग बना दिया रात-रात ॥

कुंभ एक राणा का था भृत्य हाड़ावंशी वीर ।  
 मृगया से लौट रहा कंधे पै धनुष तीर ॥  
 बोला, कौन बूंदी का नकल किला नष्ट कर,  
 हाड़ावशी क्षत्रियों का कर देगा नत शिर ।  
 नकल किले की लाज रखूंगा मैं हाड़ावीर ॥

सोड़ने नकल-किला आये राणा महाराज ।  
 'दूर रहो !' कड़के यों कुंभ, ज्यों गिरी हो गाज ॥  
 नाम से बूंदी के खेला ! सहेगा न अबहेला ।  
 मिट्टी के किले की लाज, रखूंगा दे प्राण आज ।  
 गरजे यों कुंभ 'दूर रहो राणा महाराज !'

भू पर जानुपात कर लेकर धनुष शर ।  
 कुंभ भकेला ही बचा रहा है बूंदी का गढ़ ॥  
 घेर लिया राणा की सेना ने, काट डाला शोश,  
 गिरा वीर खेलागढ़ के है सिंह द्वार पर ।  
 रक्त से है धन्य हुआ बूंदी का नकल गढ़ ॥



# विवाह



[ राजस्थान ]



एक ही पहर रात हुई है ध्यतीत अभी ,  
मुहमुंह गुंज उठता है मुमधुर शंख ॥

वर-वधू परिणय-वेदी पर चित्रवत् ,  
भाँचल से बद्ध खड़े हुए हैं नयन नत ।  
पौर वनिताएं सब सिढ़की के खोल पट ।

धूँघट की झाड़ से हैं देख रही निरशंक ,  
वर्षा की रात्रि में सघन मेघ गर्जना के ।  
संग-संग बजता है मांगलिक सग्न-शंख ।

धम गई ठिठक ईशान कोण में है हवा ।  
मेघाच्छन्न नम हुआ, छा गई अंधेरी है ॥

समाकदा में सहस्र दीपातीक झपलक ,  
भण्णिमालाओं की है हगों में मारते झलक ।  
कौन समा बीच तभी आया यह यकायक ॥

द्वार पर तभी बज उठी रण भेरी है ,  
चौक उठे समासद वर को लिया है घेर ।  
सब ने शक्ति झालें उधर ही फेरी हैं ॥

सेहरा लगाए मेड़ता के राजपुत्र से ।  
करता निवेदन है ऐसे भारवाड़ दूत ॥

युद्ध ठना शत्रु से करो न देर एक क्षण ।  
राजा रामसिंहजी भी जा रहे हैं भाज रण ॥

उनका यही है भाप सबको निमंत्रण ।  
भाप भी पधारे सब मेड़तिया राजपूत ॥

जय, जय, जय, राजाराससिंह की हो जय !  
गरज-गरज उटता है मारवाड़ दूत ॥  
जय, जय, जय, राजा रामसिंह को हो जय ।  
मेड़ता-पति ने किया घोष ऊर्ध्व स्वर से ॥

बाप उठी छाती दुलहिन की सिहर कर ,  
धूल-धूल यह घले दोनों दृग निर्भर ।  
करते निनाद वर यात्री सब समस्वर ॥

जय, जय, जय, राजा रामसिंह की हो जय ,  
मेड़ता कुमार सब अधिक न घबहर ।  
दूत महाराज का यों बोला उच्च स्वर से ॥

ध्वयं ही उठी है शूज उल्लसित हृयं ध्वनि ।  
ध्वयं शूज-शूज उठते हैं मांगलिक शंस ॥

बांधी हुई घांचल की गांठ खोल कर बर  
 (घांखों ही घांखों में देखा दोनों ने परस्पर)  
 बोला, 'प्रिये असमय ले रहा है अवसर ॥

मृत्यु का निमंत्रण है दो मुझे विदा अशंक ,  
 व्यर्थ हो उठी है गूँज उल्लसित हृदय-ध्वनि ।  
 व्यर्थ गूँज-गूँज उठते हैं मांगलिक शंख ॥

राजवेश से ही सेहरे को सिर पर धारे ।  
 घोड़े पर चढ़ चल पड़ा मेड़ता कुमार ॥

लेकर मलिन मुख और नम्र नत शिर ,  
 नव-वधू अंत-पुरी में गई लोट फिर ।  
 धीरे-धीरे बुझ गए दीप भी, हुआ तिमिर ॥

राजा की सभा में फँस गया घन अन्धकार ,  
 कंठ में पड़ी है माला सेहरा है सिर पर ।  
 घोड़े पर चढ़ चल पड़ा मेड़ता-कुमार ॥

घांचल से अश्रु पोंछती हुई माँ कहती है ।  
 वधू वेध खोल दे रो हाय हतभागिनी ॥

शांत मुख से यों कन्या माँ से लगी कहने ,  
 पैर पड़ें, 'दो न निज अश्रु तुम बहने ।  
 बधू सज्जा मेरी देह पर हो दो रहने ॥

उनकी बनुंगी मेड़ता में अनुगामिनी ,  
 सुनकर, माया ठोक, रोती हुई माता बोली ।  
 'कहती है क्या तू यह हायरो अभागिनी !'



घर के पुरोहित ने भी देकर आशीर्वाद ।  
शालि और दूर्वा से अभिषिक्त किया माथ ॥

चढ़ गई कन्या तब शीघ्र चतुर्दाल पर ,  
पुरनारीगण सब रहे हुल्लुध्वनि कर ।  
रंगारंग वेप घर दास-दासी-मनुजर ॥

पंक्तिबद्ध चल पड़े बालिका के साधु-साधु,  
जननी ने आकर हो हृषित कपोल (धूमना)  
पिता ने आकर रक्खा माथे, पं वरद हाथ ॥

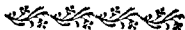
निशीथ बेला में नभ को भी आलोकित कर ।  
कौन भाज आया है रे मेड़तापुरी के द्वार ?

बंद करो बाजा कहते ही छाई स्तब्धता-सी ,  
शोर हुआ, पालकी को ठहराओ दास-दासी ।  
करने को एकत्र हुए हैं मेड़ता-निवासी ॥

मेड़ताधिपति की चिता का साज शृंगार ,  
मेड़ता नरेश जब युद्ध-हत हुए भाज ,  
कौन दुस्समय में है आया नगरी के द्वार ?

बजने दो बाजे, रोको मत, बजने दो बाजे ।  
पालकी से भ्रूंक कर कहा नव-वधू ने ॥

लग्न की पवित्र बेला भाज नहीं टलेगी ,  
आंचल की गाँठ इस वार नहीं खुलेगी ।  
मंत्र पढ़ो, यह पढ़ी फिर नही मिलेगी ॥



बांधी हुई प्रांचल की गांठ खोल कर वर  
(प्रांचों ही प्रांचों में देखा दोनों ने परस्पर)  
बोला, 'प्रिये प्रसमय ले रहा है अवसर ॥

मृत्यु का निमंत्रण है दो मुझे विदा अशंक,  
व्यर्थ ही उठी है गूँज उल्लसित हर्ष-ध्वनि ।  
व्यर्थ गूँज-गूँज उठते हैं मांगलिक संक्ष ॥

राजवेश से ही सेहरे को सिर पर धारे ।  
घोड़े पर चढ़ चल पड़ा मेड़ता कुमार ॥

लेकर मलिन मुख और नम्र नत शिर,  
नव-वधू अंत-पुरी में गई लोट फिर ।  
धीरे-धीरे बुझ गए दीप भी, हुआ तिमिर ॥

राजा की सभा में फैल गया घन अन्धकार,  
कंठ में पड़ी है माला सेहरा है सिर पर ।  
घोड़े पर चढ़ चल पड़ा मेड़ता-कुमार ॥

प्रांचल से अश्रु पीँछती हुई माँ कहती है ।  
वधू वेप खोल दे रो हाय हतभागिनी ॥

प्रांत मुझ से माँ कन्या माँ से लगी कहने,  
वेर पढ़ूँ, 'दो न निज अश्रु तुम वहने ।  
वधू सज्जा मेरी देह पर ही दो रहने ॥

उनकी बनूँगी मेड़ता में अनुगामिनी,  
सुनकर, माथा ठोक, रोती हुई माता बोली ।  
'कहती है क्या तू यह हामरी अभागिनी !'



घर के पुरोहित ने भी देकर आशीर्वाद ।  
शालि और दूर्वा से अभिषिक्त किया माथ ॥

चढ़ गई कन्या तब शीघ्र चतुर्दाल पर ,  
पुरनारीगण सब रहे हलूध्वनि कर ।  
रंगारंग वेप धर दास-दासी-मनुहर ।'

पंक्तिबद्ध चल पड़े बालिका के साथ-साथ,  
जननी ने आकर हो हृषित कपोल-धूम ।  
पिता ने आकर रखला माथे पं बरद हाथ ॥

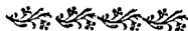
निशीथ बेला में नम की भी आसोकित कर ।  
कौन आज आया है रे मेड़तापुरी के द्वार ?

बंद करो बाजा कहते ही छाई स्तब्धता-सी  
दोर हुआ, पालकी को ठहराओ दास-दासी ।  
करने को एकत्र हुए हैं मेड़ता-निवासी ॥

मेड़ताधिपति की चिता का साज शृंगार ,  
मेड़ता नरेश जब युद्ध-हृत हुए धाज ,  
कौन दुस्समय में है आया नगरी के द्वार ?

बजने दो बाजे, रोको मत, बजने दो बाजे ।  
पालकी से झूक कर बहा नव-ययू ने ॥

सग्न की पवित्र बेला धाज नहीं टनेगी ,  
आवल की गाँठ इस बार नहीं खुलेगी ।  
मंत्र पढ़ो, यह पढ़ो फिर नहीं भिसेगी ॥



प्रणय रचेगा इस दीप्त वितानल में,  
बजने दो बाजे, रोको मत, बजने दो बाजे ।  
पालकी से भाँक कर कहा नव-वधू ने ॥

मेड़ताधिपति वर-वेश में चिता पर सोए ।  
गले में है मोतियों की माला पहने हुए ॥

डोला से उतर तब आयी वह वीर नारी,  
पति के रुधिर रंगे वस्त्र से द्यौ बाँध सारी ।  
सिरहाने बैठ गई यह घन्या सुकुमारी ॥

पति का मस्तक निज अंक में लिए हुए,  
मेड़ताधिपति संग सो गई चिता पर ।  
निशीथ-रात्रि बेला में मिलन-सज्जा पहने हुए ॥

मुहुमुंह गूँज-गूँज उठती है हल्लुध्वनि ।  
उमड़ी घाती है दल की दल पुरांगना ॥

कहते पुरोहित हैं, घन्य है सुचरिता,  
बंदीजन गाते, घन्य मृत्युजिता भ्रमृता ।  
धू-धू कर प्रज्वलित हो उठी तभी चिता ॥

बेठी हुई धाला दीप्त भचला योगासना,  
गूँज-गूँज उठती स्मशान में है जय-ध्वनि ।  
हवित हो करती हल्लुध्वनि पुरांगना ॥



## सामान्य क्षति



[ दिव्यावदानमाला ]

•

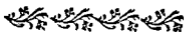
पीत माघ वातास, प्रवाहित  
निर्मल सतिष्ठा वरणा  
दूर पुरी से ग्राम विजय मे

घाट शिलामय चम्पक वन में  
बसों स्नान की सरियों के संग  
काशी महिषी करणा ॥

हे जनहीन घाट यह, पथ यह,  
घात्र राज पावन मे  
स्याम गए जन सतिष्ठा तट ये

दूने स्वल्प बूटीर निरुट ये  
बिहणों का गंभीर बल डूबन  
उठता है कानन से ॥





उत्तरोल है वायु उत्तरी  
 उत्तरोल है तटिनी  
 स्वर्ण ज्योति प्रतिविम्बित निर्मल  
 पुलकोच्छल जल करता छन-छन  
 खचित लक्ष्मणि आंचल सहरा  
 चलती हो ज्यों नटिनी ॥

मृदु रमणी कंठों से लज्जित  
 आज हुमा कलकाकुल  
 ललित मृणाल-भुजा-विलास से  
 प्रमदा तटिनी रसोल्वास से  
 मधुरालाप-प्रताप-हास से  
 गमन हो उठा आकुल ॥

जब कर स्नान, झूल पर आई  
 निकल नारियाँ जल से  
 महिषी बोली, शीत से मरो  
 मेरी सकल देह है सिहरी  
 भाग जलाश्रो शरी सहचरी  
 जाए शीत अनल से ॥

सखियाँ पर्यं इकठ्ठा करके  
 चलीं कुसुम कानन में  
 करतीं सब फीतुक दीवानो  
 पकड़ टहनियाँ धींचा-तानी  
 बुला समी को बोली रानी  
 दीपित स्मित आनन में ॥



हला, इपर घाओ, वह देखो  
 कुटी घट्टर मजानो  
 उसी कुटी में दो लगा बनल  
 सप्त कहेंगी में कर-पद-तल  
 इतना कह उमंग से विह्वल  
 हँसी हँस उठी रानी ॥

कहा मालती ने, 'रानी माँ ।  
 यह कसौ है श्रीड़ा ।  
 इन कुटियाओं का अधिवानी  
 होगा कोई यति सन्यासी ॥  
 कोई निर्धन दीन प्रवासी  
 पायेगा भक्ति पीड़ा ॥'

रानी बोली, 'दूर हटा दो  
 इस दपारं-हृदया को  
 भक्ति दुर्रम कौतुक-झीडा-रत  
 निर्भम घोवन-मद में उडत  
 बनितारों ने उन्मादिनिवत्  
 जला दिया कुटिया की ॥

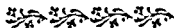
सगा घूम घनघोर फँसकर  
 घूम-घूमकर उड़ने  
 पलक मारते ही हँकार कर  
 प्रबल उदास उरुहारों की घर  
 सन-सुत दुज शिहूषा प्रसार कर  
 सगो गगन से जुड़ने ॥

फोड़ रसातल ज्यों सहराई  
 धनगिन ज्वाला-नागिनि  
 नभ की घोर नचाकर निज फन  
 मत्त हो उठी कर धन गर्जन  
 प्रलय मत्त रमणी श्रुति में ज्यों  
 गूंजी दीपक रागिनी ॥

कलरवगान प्रात विहगों का  
 बना रुदन मय-कातर  
 करते काक सदल कोलाहल  
 उत्तर वायु हो उठी चंचल  
 कुटिया से कुटिया दावानल  
 लगा फैलने आतुर ॥

चाट गई पल में भोंपड़ियाँ  
 प्रलय-लोलुपा रसना  
 निर्जन पथ से माघ प्रात में  
 मोद-बलांत शत सखी साथ में  
 लौटी कुवलय लिए हाथ में  
 रानी अरुणा बसना ॥

राज सभा में ये विचार मुद्रा में  
 बैठे भूपति  
 दल के दल गृह हीन प्रजाजन  
 हुए उपस्थित, किया निवेदन  
 सबके सब संकोच प्राप्त से  
 ये संभ्रम-संशय-मति ॥



छोड़ मभागन गढ़े हुए नून  
 मुग्य था सात गरम मे  
 पट्टे घन्तःपुर में घममय  
 कहा, 'बायें यह जेना निर्दय ।  
 पर जलवाये हीन प्रजा के  
 है बिग्य राजपरम मे ।'

कहा रुठ कर रानी मे  
 'पर बिगे बत्ताया जाना ।  
 नष्ट हुई बुद्ध बुट्टी पुरानी  
 नहीं हुआ हज बोई प्राणी  
 ललित महि'प-रजन में  
 बिगना टप्य बहाया जाना ।'

कहा नृपति मे रोह भोष बो,  
 तेदिन दुग्य हृदय है—  
 अब लज तुम राजा बी रानी  
 बना जानो दीनों बी हाथी  
 निर्दय बन कर ममभ'ता होना  
 यह नि.सुन्दर है ॥'

रानी मे साबर रानी का  
 लोख दिया नर नरुना  
 राजाका दा, निर्दय हीकर  
 लोख दिया ललित दाहाकर  
 बीर बिलुणी का राजी बो  
 दिया दाग मे बहना ॥

पथ में छोड़, नृपति बोले,  
 अब मांगों दर-दर रानी ।  
 कूटी क्षणिक झीड़ा से तेरी  
 जितनी हुई रात की डेरी  
 तुम्हको निज थम से अब उतनी  
 होगी कूटी बनानी ॥

एक वर्ष की अवधि तुम्हें है  
 इससे वापस आकर  
 समा मध्य कर प्रणति, खड़ी रह  
 समा समा बनाओगी यह—  
 हुई जगत में कितनी दाति है  
 जोगुं कूटीर मिटा कर ॥

## पुजारिणी



•

होकर नमित, बुद्ध-पद-नख-कनिका  
माँग लाए विम्बिसार  
निभृत प्रासाद-वन-मध्य कर प्रस्थापित  
उस पर कौशल से यत्न से किए रचित  
घति घररूप मनोहर शिलामयस्तूप  
शिल्प के शोभा के सार ॥

संध्या की वेला मे शुचि वसन पहन कर  
राजवधू राजबाला  
लाती थीं सजाकर सुमन गूँथ माल में  
स्तूप पद देश में रुचिर स्वर्ण घाल में  
अपने सुकोमल करों से जला देती थी  
कनक-प्रदीप-माला

फिर जब अभिषिक्त हो गए भजातशत्रु  
पिता के आसन पर  
शोणित के बहा स्त्रोत देकर, प्रजा को कष्ट  
निज विद्व-धर्म कर दिया पूर्णतया नष्ट



भस्म कर डाली बौद्ध शास्त्रराशि यज्ञानल  
ज्वालाओं में सत्वर

घोषणा भजातशत्रु ने करा दी—  
सब पुरनारियां हो विदिता  
जगत में वेद विप्र नृपति के अतिरिक्त  
कुछ भी नहीं है पूज्य कुछ भी नहीं है इष्ट  
जीवन का सार यही, भूलने से इसको  
होगी अति विपदा

उस शुभ्र शरद के दिवसावसान में  
दासी नाम श्रीमती  
पुण्यतोया सलिला में स्नान निमज्जन कर  
पुष्पक प्रदीप स्वर्ण-घाल में वहन कर  
खड़ी हुई राज-महिषी के पद में नमित  
दृगों में से विनती

सिहर सभय महिषी ने कहा, 'बात यह  
याद क्या न मन में  
यह भजातशत्रु ने लगा रखी है रटना  
जो भी कोई स्तूप में करेगा अर्घ्य रचना  
छूलि पर चढ़ेगा या जीवन बिताएगा  
चिर निर्वासन में

लौट कर वहाँ से चली गई चुपचाप  
वधु अमिता के घर



रखकर सम्मुख वे स्वच्छ स्वर्ण का मुकुट  
बांधती थीं कोमल करों से साँवल चिकुर  
यत्न से रही थीं भाँक प्रमोज्ज्वल सिद्धर  
शोभित सीमंत पर

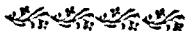
श्रीमती को देख वक्र हो गई सीमंत रेख  
काँप काँप गए हाथ  
बोली, 'निर्बोध किस साहस के बल से  
लाई है तू पूजा, रो धभी यहां से चल दे  
कोन घाडे आएगा हमारे ? कह,  
होगा जब विपदा का वज्रपात

अस्त रवि-रश्मियों की आभा में गवाक्ष में  
नत शिर सम्मुख  
बैठी थीं कुमारी शुक्ला मौन घोर एकाकिनि  
ध्यान से रही थीं पढ़ एक काव्य-भाष्यायिनि  
धौंक उठी सुनकर किकिरि की मंद ध्वनि  
हुई द्वार उन्मुख

श्रीमती को देख, द्रुत पद से गई निकट  
पुस्तक को छोड़ कर  
कहती है सावधान उसके यों कान में  
'राजा का आदेश आज किसके न ध्यान में  
जाना चाहिए क्या इस भाँति मृत्यु मुख में  
बेतहाशा दीड़ कर ।'

द्वार द्वार इसी याचना से फिरी श्रीमती  
लिए हुए भयं घाती





सबको पुकार कर कहा पुरवासिनी  
 भा गई है प्रभु पूजा बेता वरदायिनी  
 गुन, घर घर में है कोई भय गाते तो  
 कोई उसे देते गानी ।

हूय चली दीप रवि-रश्मियाँ नगर सोध  
 तमायून हो उठे ।

पथ जनहीन हुआ, तिमिर विलीन हुआ  
 सकल तूमूल कल कोलाहल क्षीण हुआ  
 भारती के घंटों से प्राचीन राज देवालय  
 मूसरित हो उठे

सारद निशा के स्वच्छ निमृत्त तिमिर में  
 तारे भगणित जले

सिंहद्वार पर बज उठे घोर हैं विषाण  
 बंदीगण सम्मिलित छेड़ते हैं सांध्य तान  
 'मंत्रणा भवन में सभा हुई है समाधान !'  
 द्वारी यों पुकार चले ।

ठीक तभी प्रहरी गणों ने देखा चौक कर  
 हुई हो ज्यों उद्भ्रान्ति

राज उपवन के विजन अंतराल में  
 स्तूप-पद-मूल में गहन तम-जाल में  
 जल रहे हैं क्यों पंक्ति-पंक्ति लघु-लघु दीप  
 तारक-माला की भांति



आया पुर-रक्षक तुरंत तभी दौड़ कर  
 नंगी तलवार लिये  
 पूछा, 'कौन दुर्मति जो प्राण वारती  
 मरने के लिए क्यों उतारती है भारती ?'  
 'श्रीमती है नाम, दासी बुद्ध की हूँ' शब्द ये  
 मधुर सुनाई दिए ।

उस दिन नारी के हृदय ने पापाण पर  
 नया इतिहास लिखा  
 उस दिन शरद के निर्मल निशीथ में  
 विजन प्रसाद-वन-बोधिका पुनीत में  
 बुझ गयी स्तूप-पदमूल में चकित सी  
 शेष भारती की शिक्षा ।

## प्रतिनिधि



बैठे हुए प्रातः काल  
सतारा के दुर्ग भाल  
महाराज शिवाजी ने देखा दृश्य एक दिन

पूज्य गुरु रामदास  
द्वार-द्वार भिक्षा मास  
फिरते थे नगरी में ज्यों बुभुक्षु घम्रहीन ।

सोचा यह कैसा काण्ड  
गुरु और भिक्षा-भाण्ड  
जो समय, घर में न जिसके है दैन्य सेश

सब जिसके हस्तगत  
राजेश्वर पदानत  
जग में नहीं क्या उनकी भी सामना का रोष ।

यह तो है महाराज  
मरना छिड़ित पात्र  
व्यर्थ यह चेष्टा क्या न दृष्ट्या के शमन की ?



सोचा, यह देखना है  
देना और कितना है  
भोली भर जाय, इच्छा हो न भिक्षाटन की ।

तत्क्षण लेखनी ले  
लिखा कुछ, कौन जाने  
कहा बालाजी को बुला, मंत्रणा सदन में

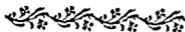
गुरु लिए भिक्षा आश  
घाएँ जब दुर्ग पास  
पत्र यह रख देना, उनके चरण में ।

गुरु चले गाते हुए  
सम्मुख थे जाते हुए  
कितने ही पंथी और कितने ही भस्व रय

हे भवेश, हे शंकर  
सभी को दिया है घर  
मुझी को दिया है सिर्फ भडिग धनंत पय ।

अन्नपूर्णा माँ उदार  
लिए हुए विद्व भार  
उसकी छाया में सुख से है सर्व चराचर

तुमने ही दिगंबर  
माँ से मुझे छीनकर  
अपनी धरण ले, किया है निज अनुचर ॥



समापन कर गान  
कर मध्याह्न-स्नान  
आए दुर्ग द्वार गुरु रामदास जिस क्षण

बालाजी ने हो नमित  
संभ्रम धृष्टा जड़ित  
पावन पदों में कर दिया पत्र धर्पण

गुरु ने सस्मित हास  
उठा लिया धनायास  
एक दृष्टि में ही पढ़ गए लिपि पहचानी ,

पद-पद्य में नमित  
आज थे समर्पित  
स्वयं शिवा, सकल राज्य और राजधानी ।

पत्र पढ़ रामदास  
गए शिवाजी के पास  
और उनसे यों बोले, 'बरस, कहो, मैं भी मुन्ने ।'

राज्य यदि मुझे दोगे  
फिर तुम क्या चुनोगे  
कीन गुण तुम में हे गुणी ! कहो, मैं भी मुन्ने ।'

आपकी सेवा में प्राण  
हृपं से कहेंगा दान  
कह, शिवाजी ने छुमा युगल चरण को



गुरु ने कहा, लो भोली  
 बन कर हमजोली  
 चलो नगरी में वत्स, आज भिक्षाटन को

शिवा गुरुजी के साथ  
 लिए भिक्षा-पात्र हाथ  
 फिरते मधुकरी की याचना को द्वार-द्वार

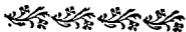
नृप को विलोक घामे  
 बालक घरों में भागे  
 माता को पिता को बुला लाते रींच वारवार ।

धतुल ऐश्वर्य रत  
 (उनका भिक्षुक व्रत! )  
 देखो, यह देखो, शिला जल में है तैरती ,

भिक्षा देते लज्जा-भरे  
 कंपित करों से डर  
 सोचते हैं, कैसी यह सीसा है महत् पी ।

दोपहर दुर्ग मीन  
 घात कर कर्म-काज  
 कर रहे विध्राम सब पुरवासी जन

इकठारे पर तान  
 छेड़, गुरु गाते गान  
 धानंद-मुत्तक-जल-भासित हुए नयन ।



अहे त्रिभुवन पति  
 ज्ञेय न तुम्हारी मति  
 तुम्हें न अभाव कुछ कैसी फिर याचना ।

करते क्यों जनमन  
 भिक्षा हेतु विचरण  
 सभी के सर्वस्व-धन की क्यों बनो चाहना ।

दोप दिवसांत में  
 नगरी के प्रात में  
 सरिता के कूल, संध्या स्नान से ही परिवृत

राध कर भिक्षा-ग्रन्थ  
 गुह ने प्रसन्न मन  
 खुद पाया, कुछ दिया शिष्य को प्रसादवत् ।

राजा बोले हँसकर-  
 'राज्यदवं ध्वंस कर  
 घातने किया जो मुझे पथ का है मिश्रक ।

प्रस्तुत है यह दाग  
 घोर क्या है अमिताय  
 तत्पर हूँ गुरु से ग्रहण हेतु गुह-दुःख ।

गुरु बोले, 'जुने, मुन  
 पासा है कटित ग्रह  
 अनुभव लेना होगा मुझे अब गुह भार



भाजा तुम्हें मेरी यह  
मेरे नाम, मेरा रह  
राज्य अगीकार करो वत्स भव पुनर्वार ।

तुम्हें बना चुका विधि  
मिथुक का प्रतिनिधि  
राजेश्वर होगे तुम, किन्तु दीन उदासीन ।

पालो वत्स, राजधर्म  
जानकर मेरा कर्म  
राज्य को चलाओ किन्तु रहो जैसे राज्यहीन ।

वत्स तब लेओ यह  
मेरे आशीर्वाद सह  
मेरे पास मात्र यह भगवा जो गात्र वास ,

वैरागी का उत्तरीय  
तेरा ध्वज बन्दनीय'  
धोले शिवाजी से यों समर्थ गुरु रामदास ,

नृप शिष्य नत शिर  
बैठा रहा नदी तीर  
या प्रसस्त भाल भाज राशिराशि चिताप्रस्त ,

धमा चुके म्वाल वेणु  
गोठ भोर चलीं पेनु  
दूर प्रतीची में दिवानाय हो रहे थे प्रस्त ,



पूरबी की छेड़ तान  
 सन्मय रच गान  
 एक मन एक प्राण गाने सगे रामदास ।

देकर मुझे यों रात्र  
 पहना नुरनि तात्र  
 बोन तुम, करते ओ मेरे अग्नरात्र धाम ?

विमुक्त वनि, प्रभो !  
 पादुका तुम्हारी हो तो  
 रणगो मैने, मै तो रत्ना हूँ पादपीठ तने ।

संध्या अब धाई झुड़  
 बैठा रहूँ अब लड़ ?  
 नित्र रात्र में ललित तुम अब धायो बने ।

## नगर लक्ष्मी

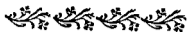


[ कल्पद्रुमावदान ]

दुर्भिक्ष त्रस्त धा थावन्तीपुर जब  
भूज उठा दसों दिशाओं में हाहारव  
प्रश्न किया बुद्ध ने यों निज भक्तगण से  
फिर सचागत ने पुछाया जन-जन से  
'दाधित को कौन भाज देगा भन्नदान  
सेवा-व्रत यह कौन लेगा पुण्य प्राण ।'

सेठ रत्नाकर ने सुन तरेकाल  
कर लिया लज्जा से नमित निज भाल  
कहा मंद स्वर में यों फिर बढकर  
भाज है क्षुपार्त्त देव सारा ही नगर  
समित कहै मैं क्षुपा-इसकी विपम  
स्वामिन्, महीं मैं इस कार्य में सक्षम ।'

धोले तब विथ्रुत सामन्त जयसेन  
जो भी है भादेश घस्वीकार है मुझे न  
से सेता सहर्षे उसे निज धीरा पर  
होता मैं प्रसन्न यदि बल धीरकर



रक्त देने से भी होता सिद्ध कोई काज  
किन्तु मेरे घर में कहां है अन्न धाज ।

निःश्वास लेकर यों बोले घमँपाल  
में क्या कहूँ ऐसा ही है मेरा दग्ध भाल  
सोना जो जगलता था मेरा ध्यारा खेत  
चूस रहे धाज उसी को अज्ञात प्रत  
राजकर देना ही है हो रहा कठिन  
हृषा दीन हीन धाज मेरे ऐसे दिन ।

● एक दूसरे का मुख जोह रहे सब  
उत्तर में कहने को पास भी क्या भव ।  
निर्वाक् संनस्त उस सभाघर में  
क्षुधा से व्यथित उन व्याकुल नगर में  
मात्र दो करण अर्धे तयागत बुद्ध की  
संध्या-तारा सद्गुण प्रदीप्त थीं, प्रबुद्ध थीं ।

धीरे-धीरे तभी उठ खड़ी हुई फिर  
तप से धारण भाल सज्जानत निर  
एक भिक्षुणी अनापविष्टक गुता  
वेदना-विदर्श अश्रुमीकरप्सुना  
बोल उठी बुद्ध-पद-रेणु स्पर्श कर  
मधुरिम कंठ में विनम्र भावभर ।

‘स्वामी ! यह भिक्षुणी अथम गुप्तिपा  
इसीने आदेश भार सहन किया  
अन्दन जो करते हैं सर्वहाग जन  
प्रिय है मुझे क्यों हो वे मेरे ही गुपन



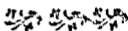
अन्न वितरण को न कोई भी तैयार  
लेती हूँ मैं शीश पर आज से ही भार ।'

विस्मय मान, बात सबने सुनी  
भिक्षु-कन्या, तुम तो हो मात्र भिक्षुणी  
उकसा रहा है तुम्हें कौन अहंकार  
जो कि लिया तुमने है यह गूढ़ मार  
कैसे कर पाओगी कठिन यह काज  
भिक्षुणी है, पास क्या तुम्हारे कहो आज ।'

कहा यों उन्होंने कर सबको नमन  
'मात्र यह भिक्षा पात्र ही है मेरा धन  
में तो एक दीनहीन कन्या मात्र हूँ  
सर्वाधिक दान की दया की पात्र हूँ  
पाऊँगी सभी की दया कष्टों का लेश  
होगा यों जयी अवश्य प्रभु का आदेश ।

है मेरा भंडार सदा अक्षर, अक्षर  
रक्खा यह आप सबके ही घर-घर  
आप सब चाहेंगे तो होगी धर्म-जय  
भिक्षा-पात्र से ही होगा एक भी न क्षय  
भिक्षा-अन्न से ही बचाऊँगी वसुधा  
मिटानेगी भीषण दुर्मिल को दुष्ठा ।

# स्पर्शमणि



[ कवित्त ]



करी लीर बुझावन, सनावन पुन मन  
करी से हृदियाम  
हादर चरणु मोन उप काव वेर हीन  
दिय ने दिना प्रणाम

पुनरी है कवण, अरी से है छागवन  
करी है नाव टाळर ।  
वाग कर्तु से कर्तव्य, वाग वादरुचन  
पुन दन ददि पुन

- को वर है केण काव, वादरुचन है कृ पा ।  
दिय कर्तव्य से  
वेण है से वाग दन, को व हीन सवत  
है क हीनो कवण से ।

को वर है करी कव, को वर है को व कृ  
वा कवण है कवण कवण  
दिय दन दनसे कर्तव्यसे को कवण  
दिय कव कव कवण



निज अम्बुस्थान हेतु प्राप्ति वरदान हेतु

की थी शिवाराधना

एक दिन, रात शेष, स्वप्न में हुआ आदेश

पूर्ण होगी प्रार्थना ।

जाओ जमुना के तीर, गोस्वामी के हो अघोर

पकड़ लो दोनों पाँव

उन्हीं को जनक जानो, पास है उन्हीं के मानो

रिद्धि-सिद्धि का उपाय ।

सुन क्या सनातन होगए आनुर मन

आज क्या हमारा है

जो भी कुछ था सकल त्याग आया हूँ मैं चल

मिथा ही सहारा है ।

तभी विस्मरण टूटा, साधु यों पुकार उठा

ठीक तुमने कहा

एक दिन नदी तट, मिला मुझे रेणु पर

पारस माणिक्य था ।

सोच कभी आए योग, दान में ही उपयोग

दाव दिया बालुका में

उठा से जाओ ठाकुर, दुःख हो तुम्हारा दूर

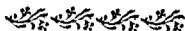
उतके छूने न छूने ।

पीप विष ने आकर, सोदा बालुका-निकर

पारस माणिक्य पाया

सोहे के दो मंत्र-पट, सोने के हो उठे भट

बैसे ही उगे छुषाना ।



विप्र तब रेत पर, विह्वल से, बैठकर  
करने लगा मनन  
यमुना कल्लोल गान, चितित के कान कान  
करती है क्या कथन ।

नदी पार रक्त छवि दिवसांत कलांत रवि  
हुआ अस्तावल गत  
तब विप्र उठकर साधु पद खेद कर,  
बोला अश्रु गद्गद ।

जिस धन से हो धनी, मणि को न गिना मणि  
मैं उसी को कणिको  
माँगता हूँ नत शीश, कह यों नदी के बीच,  
फेंक दिया मणि को ।



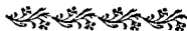
## दीन दान

किया निवेदन राज-भृत्य ने महाराज से सविनय नहीं आपके स्वर्णिम देवालय में लेकर आश्रय साधु शिरोमणि भक्त नरोत्तम आज लगाकर आसन पथ के अंचल, तरु छाया तल करते हैं संकीर्तन श्रद्धा-भक्ति-विभोर भक्तगण घेर उन्हें दल के दल उद्बलित आनंद अश्रु से धोते हैं धरणी-तल ।

दूग्यप्राय देवांगन, ज्यों तजकर स्वर्णिम मधु-भाजन कमल गंधमाती भृंगावलि कर द्रुत पंख प्रसारण उड़ो धली जाती गुंजित उन्मीलित पंचविपिन में, ह्यो नर-नारी ललक-पुलक से अमित मयन में मन में झाल उपेक्षा-दृष्टि स्वर्ण-मंदिर पर दीड़े घाते ठीक वहाँ उम्र पंथ किनारे जहाँ कि वे हैं पाते— एक भक्त का पूर्ण प्रफुल्लित सुरमित हृदय कमल है वितरित करता यहाँ मरण में स्वर्ग-सुरभि निर्मल है एकाकी देवता रत्नवेदी पर देवालय में ।'

यह सुनते ही राजा के भर घाया क्षोभ हृदय में सिंहासन से उठकर वह चल दिया जहाँ तरु-तल में ये शृणासनासीन साधु, कर बिनती धरण युगल में





कहा उन्हें, 'दृष्टव्य नृपति निर्मित यह नव्य-निकेतन स्वर्णशीर्ष यह, यह नभस्पर्शी क्यों कर इसका वर्जन करते हो स्तवगान देवता का पथ में निर्जन में ?' कहा साधु ने, 'नहीं देवता है उस स्वर्ण-सदन में' बोल उठा राजा सरोप, 'क्या कहते हो संन्यासी घात नास्तिकवत करते क्यों होकर प्रभु-विश्वासी ? क्या वह मंदिर शून्य, वहाँ पर नहीं देवता स्थित है ?

अरे वहाँ मणि-मूर्ति रत्न-सिंहासन पर दीपित है ।' कहा साधु ने, 'शून्य नहीं वह, राज्य दंभ से पूरित नहीं जगत्पति को, तुमने है किया स्वयं को स्थापित।' भ्रूकुंचित कर बोले राजा, 'बीस लाख मुद्रा से निर्मित किया अनिदित मंदिर अंबर-भेदी हमने पूजा मंत्रों से अर्पित कर किया ईश को दान तुम कहते हो उस मंदिर में नहीं कहीं भगवान ।' नांत वदन में कहा साधु ने, 'बह्नि-दाह से दीन बीत सहस्र प्रजा जिस वत्सर अन्न-वस्त्र गृह-होन द्वार तुम्हारे से लौठी लें अक्षय्य करण पुकार हो निरुपाय कराल अवधि यह काटी किसी प्रकार गुहागर्भ में पथ प्रांतर में तट तल में या वन में या अश्वत्थ विलीण जीर्ण जंजर मंदिर-प्रांगण में । बीस लाख स्वर्णम मुद्राएँ दीन प्रजा को देकर स्वर्ण दीप्य मंदिर तुमने यह उगी क्यों बनवा कर या देवानित किया, उन्नी दिन बोले मैं भगवान है मेरे अनादि घर में अगणित प्रकाश अतिमान इस अंत मोक्षम भवन की है हर विति विरंतन



सत्यशांति श्री दया प्रेम जो स्वार्थी क्षुद्र कृपण जन  
जिनसे आश्रय पा न सके उनके गृहहीन प्रजागण  
वे करते गृह दान मुझे, कह प्रभु चल पड़े उसी क्षण  
पंथ प्रांत में तरु तल में वे दीन-संग दीनाश्रय  
गहन सिंधु में स्फीत फेन ज्यों सारशून्य और मृण्मय  
बैसे ही तब परम शून्य यह मंदिर है भूतल पर  
स्वर्णदपं बुदबुद ।’

राजा जल उठे रोष से सत्वर,

कहा, ‘भंड, पामर, वंचक, तुम राज्य हमारा तजकर  
चल दो इसी मुहूर्त,’ साधु तब बोले शांत मधुर स्वर  
‘भेजा जहाँ भक्त-वत्सल को उस निर्धन के धन को  
उसी स्थान में कर दो निर्वासित प्रभु के इस  
जन को ।’

## पुरातन भृत्य

घोहो ! चेहरा है कैसा ! भूत और प्रेत जैसा ।  
निर्बोध भति घोर ।

चाहे कुछ भी लो जाय, गृहिणी की यही राय  
केष्टा बेटा ही चोर ।

उठते क्या, बैठते क्या, उसे कोसता हूँ सदा  
किन्तु ज्यों मनमुना

जितना पाता है बैठ, उतना नहीं वेतन  
तब भी न चेतना

बहुत प्रयोजन, पुकारता हूँ प्राणपण  
धीलकार करता हूँ केष्टा

करूँ कितनी भी स्वरा, किन्तु मुनता न मरा  
छान मारता हूँ सारा देष्टा

देता हूँ जो एक चीज इनकी उगे तमीज  
पन में बनाता तीन

तीन देता हूँ तो दोष, रहती है शिकं एक  
दोष हो जाती किनीन



निशा में है ऐसा सघा, जहाँ तहाँ मिले सोता  
 दिन दोपहर सदा  
 गालियों की में बौछार, छोड़ता है बार-बार  
 पाजो, हतभाग्य गया ।  
 तब सड़ा द्वार पास, करता है मंद-हास  
 जल उठता है पित्त  
 तो भी उड़का प्रमार ! ख्यागना उसे दुभार  
 बड़ा पुरातन मृत्यु  
 कहती है घर की कचरे लिए हुए रस मूर्ति  
 रखो यह घर बार  
 बेष्टा को लेकर संग रहो अति सानंद  
 मान ली मैंने ही हार  
 मानता नहीं घासन, जितना बसन बासन  
 घसन-घासन सब  
 क्या पता कहीं क्या रहा पैमा जा रहा है बहा  
 बिगड़ गया है डब  
 जाना अब है बजार, मारा दिन होना पार  
 देरना भी दुष्टरय  
 करो यदि बेष्टा तो, छोड़ दग बेष्टा को  
 क्या न धीरे मिले मृत्यु  
 मुन उठा उरवेग, बला कूट में गवेग  
 बोटी सीब उगे सामा  
 कहना है उगे. बाजी ! दानेया न राजी राजी  
 धाब से मुझे हटाया

धीरे से जाता है चला, सोचता हूँ, टली बला  
 किन्तु भगले ही दिन  
 हुक्का हाथ में बढाये, सड़ा हुमा मुंह बाए  
 भक्कल का दुःख  
 है भति प्रसन्न मुस, नहीं उसे कोई दुस  
 भति भकातर-चित्त  
 छुड़ाने पै भी त छोड़े, कोई फिर हाथ जोड़े ?  
 बाह पुरातन मृत्य !  
 उस वर्ष बनायास, हुमा कुछ पैसा पास  
 किया कुछ धा व्यापार  
 हुमा तब यह मन, पुण्य-धाम वृन्दावन  
 चला जाय एक बार  
 धा कुटुम्ब भी तो पर, चलने को तत्पर  
 समझाया सानुनय  
 जो भी है पति का पुण्य, वही है सती का पुण्य  
 व्यर्थ क्यों बढाएँ व्यय !  
 किन्तु बेट रस्सारस्सी घोर कर कस्साकसी  
 बाँध बोरिया-बसन  
 कड़े चूड़ी बजाकर, बवस-पेटी सजाकर  
 पत्नी ने किया रुदन  
 परदेश में जाकर, केष्टा को ले जाकर  
 कष्ट भति होगा नाथ  
 मैंने कहा, राम राम, ऐसा भी क्या कुहराम  
 निवारण तो है साथ



एक-एक दीड़ी रेल, उतरा मैं देखा खेल  
घाया जब बर्दमान

घा रहे थे कृष्णकांत घानन प्रति प्रगांत  
लेकर तमाखू पान

स्पर्द्धा में प्रनुचित उसकी यों भगणित  
कितनी सही है निरम

कितना भी देऊँ दोग, फिर भी न घाता रोप  
देख पुरातन मृत्यु ।

घाया जब श्रीधाम, दक्षिण में धीर वाम  
'आगे पीछे पारों धीर

पंखों ने लिया जो घेर, देहका हुआ जो ढेर  
प्राण डाले भ्रमभोर

मिले हम पाँच सात, लिया गृह एक साथ  
बन्धु भाव समलिन

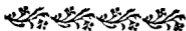
दिया यों वही निवास, मन में बँधी यों घास  
पेन से बटेंगे दिन

दिगु वहाँ बजवाला, वहाँ हाथ यनमासा  
वही बनमासी कांत

घात्र हंत, हा घनंत, वहाँ वह है घनंत  
हुवा हमें ही बलंत

बन्धु जो भी थे पाबन्, सारे ही थे स्वप्नवन्  
छोड़ बले मेरा संग

वे घरेला, गुना, चर, सर-सर ध्याधि-सर  
बिबा हुआ सारा संग



निशिदिन धीन हीन, मैं पुकारता हूँ धोए  
केप्टा आ जा रे पास

दिन कुछ ही है शेष, यहाँ इस दूर देश  
कहाँ बचने की आश ?

मुख उसका विलोक, धीर जाग उठा शोक  
ज्यों हो वह मेरा वित्त

निशिदिन दत्तवित्त, रहता सिरहाने स्थित  
मेरा पुरातन भृत्य

मुख में देता है जल, फिर पूछता कुशल  
बैठ सिरहाने पास

जागता है अपलक, आती भी नहीं भयक  
मुख में नहीं है घास

कहता है धारवार, शीघ्र होगा उपचार  
स्वामी नहीं करे भय

देश लीटोगे अचिर, ठकुरानी माँ को फिर  
देखोगे, है निश्चय

कर में धारोग्य लाभ, खड़ा हुआ शय्या त्याग  
हुआ वह पवराकांत

घोट कर मेरा काल, हुआ अन्त हा-कपाल !  
स्वयं वह व्याधि-जलांत

दृष्ट उसे संज्ञाहीन, भील गए दिन तीन  
बंद हुई नाड़ी धात्र



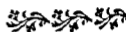
त्यागने चला था जिसे, कितनी ही बार अरे  
वही आज गया त्याग

बहुत दिनों के बाद, हृदय में ले विषाद  
लौटा घर, कर तीर्थ

किन्तु आज साथ नहीं, हाथ चिरसाथी वही  
मेरा पुरातन भृत्य ।



## मूल्य-प्राप्ति



सगठन की तिनहिर सीएँ रात  
सह निष्पुनर सीत के भापात  
सुरभा गए हैं सारे पदम वृन्द ।  
ऐसे में गुदाम मासी घर में  
जानन में स्थित सरोवर में  
जाते जैसे फूटा पदम है समर ।

विश्व के हेतु उमें तोड़कर  
सना सह प्रासाद के द्वार पर  
साधना की मिते नृप-दर्शन ।  
इसी क्षण, देस पद उद्वृत्त  
विश्व विपुल्य सीर हर्षादन  
बोला सी भाषी से एह गाव जन ।

‘सह’ को तिला है पद समनय  
करना इमें में ‘सह’ है कर  
कृप्य विदना होना तुम्हें इसीकार ?



पूज्यपाद बुद्ध भगवान् आज  
 माग्य से हमारे आए पुर माँक  
 उनके पदों में दूंगा उपहार' ।

माली ने कहा यों 'स्वर्ण एक माशा  
 पाऊँगा मैं मूल्य, यही मुझे आशा,  
 पथिक देने को हुआ तत्पर ।

अति समारोह साथ इसी काल  
 लिए हुए बहुपूजा अर्घ्य याल  
 नृपति अचानक आए बाहर ।

महाराज राजेन्द्र प्रसेनजित  
 गाते हुए मंगल मधुर गीत  
 जा रहे थे बुद्ध दर्शन हेतु,  
 देखा जो उन्होंने असमय फूल  
 पूछ ही तो बंटे 'कितना है मूल्य  
 लेना प्रभु-पद अर्पण-हेतु ।

माली ने कहा विनीत, 'हे राजन्  
 अभी अभी एक स्वर्ण माशा परण  
 इसका लगा चुके थे महाशय,'  
 'चिन्ता नहीं, दस माशा देंगे हम'  
 'बीस माशा' पाँच भी नहीं या कम  
 करना दोनों ही चाहते थे क्रय ।



'मैं ही लूंगा, दोनों यही ठानते  
 दोनों ही नहीं हैं हार मानते  
 मूल्य चढ़ता ही गया पल-पल  
 माली के घों भाव हुआ हृद्गत्  
 दोनों जिसके लिए विवाद-रत  
 मैं ही उसे दूँ तो मिले क्या ही फल ।

बोला वह जोड़कर दोनों कर  
 क्षमा करें आप मुझे दया कर  
 इसको न मेरा बेचने का मन ।

और वह दौड़ गया तराशाण  
 बुद्ध जहाँ बंटे थे प्रसन्न मन  
 उद्मासित था सकल जगत् ।

बंटे थे सगाए हुए पद्मासन  
 विकसित ध्यान प्रशांत मन  
 निर्विकार सच्चिद् ध्यानद भूति ।  
 दृष्टि से थी भरती यमज शक्ति  
 स्फुरित अक्षर पर दीप्त कांति  
 करुणा की सुधास्निग्ध हास्य-ज्योति ।

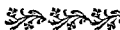
देखते ही हो गया मुदाम स्तम्भ  
 दृग् विस्फुरित, अदमक मुग्ध,  
 मुख से न बोल कुछ निश्चये,



गिर पड़ा सहसा भूतल पर  
 पकड़ करों में पक्ष दृढ़ कर  
 पूज्य पाद प्रभु के चरण में ।

अमृत की राशि बरसाते हुए  
 बुद्ध ने यों पूछा मुसकाते हुए  
 'कहो वरस, क्या तुम्हारा प्रयोजन?'  
 व्याकुल सुदास ने कहा यही  
 'प्रभु चाह और कुछ भी नहीं  
 पाऊँ एक पद-पद्म-रजकण' ॥

## वै दिन



काश, कि जो मैं जन्मा होता कालिदास के काल में  
हो जाता देवात् दशम् मणि नव रत्नों की माल में ।

स्तुति का एक श्लोक गा देता  
नृप से प्रतिफल मैं पा लेता  
उज्जयिनी के विजन प्रान्त में  
एक सदन उपवन परिवेष्ठित  
रेवा के तट, चम्पा के तल  
जुड़ती रसिक सभा संध्याञ्चल  
क्रीडागिरि पर मुक्तकंठ से  
तान छेड़ता मैं माह्लादित ।

जीवन तरी वही जाती यों मंदाक्रांता ताल में  
काश, कि जो मैं जन्मा होता कालिदास के काल में ।

चिंता को देखा जसाञ्जली  
होती कोई भी न त्वरा  
मूढु पद से चलता यह जीवन  
क्योंकि नहीं हो मृत्युगरा

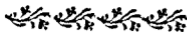


षट ऋतु में सम्पूरित होकर  
 मिलन घटित होता स्तर-स्तर, पूर  
 छः सर्गों में जीवन क्रम की  
 होती ग्रथित अपूर्व छटा  
 विरह वेदना की तलशायिनि  
 तप्त अबलस्य अश्रुमंदाकिनी  
 मंद-मंद संचारित होती  
 रचती कोमल करुण कथा

हो आषाढी मेष संतरित मंथर-मंथर अलस भरा  
 मृदुपद से चलता यह जीवन ज्योंकि तनिक भी हो न खरा।

खिल-खिल उठता वकुल  
 प्रिया के मुख-मदिरा उन्माद से  
 पदाघात रोमांच जगा देता  
 अशोक के गात में  
 प्रिय सखियों के मधुर नाम सब  
 करते ललित छंद पूरित ख  
 ज्यों रेवा के कलित कूल में  
 कल हंसी की कल ध्वनियां  
 कोई नाम लता, मधूलिका  
 कोई ललिता, आम्नपालिका  
 मंजलि, मंजुलिका, मंजरिणी  
 देते कितनी भङ्कृतियां।

सभी कुंजवन में आ जातीं चेत चाँदनी रात में  
 पदाघात रोमांच जगा देता अशोक के गात में।



धारण कर कुरुवक का घूँदा  
 श्यामल चित्रकण केश में  
 लीला-कमल न जाने क्यों  
 ले कोमल करतल देश में  
 झलक सजाती कुंद फूप से  
 शिरिष भूलते कणमूल से  
 कनक मेखला में लटकाती  
 नवनीलों की मालाएँ  
 तन की धारा-यंत्र-स्नान दे  
 झलक जाल में घूप घूम ले  
 लोध्र फूल की शुभ्र रेणु को  
 मलतीं मुख पर बालाएँ

कालागुरु गुह्यंघ रमी रहती वासक परिवेश में  
 शोभित होती कुरुवक माला श्यामल चित्रकण केश में।

कुंकुम की पत्रक-रचना से  
 रहता उन्नत वक्ष टँका  
 मंचल के प्रांतर में रहता  
 हंस-मिथुन का चित्र टँका  
 विरहातुर आषाढ़ मास में  
 बाट जोहती कंत आश में  
 एक-एक पूजा प्रसून रख  
 दिवस काटतीं गिन-गिन कर  
 सटा वक्ष से निज प्रिय वीणा  
 गान छेड़तीं, गा पाती ना  
 रक्ष झलक, मुख म्लान हगों से  
 आँसू भरते भर-भर-भर



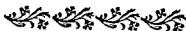
मिलन निशा में धज-वज उठता पद में जोड़ा नूपुर का  
 फुंकुम की पत्रक-रचना से रहता उन्नत वक्ष ढँका

घपनी पट्टसारिका को वे  
 प्रिय का नाम पढ़ा देतीं  
 पटुता से, कंकण भङ्ग कर  
 वन्ध मयूर नचा देती  
 ले कपोत को कर में सुख से  
 सहलातीं मुख को निज मुख से  
 घुगा सारसी को देती वे  
 कुडमल कोरक ला लाकर  
 घेणो को प्रांदोलित करतीं  
 बात शौरसेनी में करतीं  
 लिपट गले से, 'हला पियो तो !'  
 कहती कसमें खा-खा कर

तरण आन के घाल बाल में दल की दल पानी देतीं  
 घपनी पट्ट सारिका को वे प्रिय का नाम पढ़ा देतीं

मैं भी उस नवरत्न सभा में  
 एक घोर बैठा रहता  
 दिङ्नाग को देख, दूर से  
 थड़ापूएँ नमन करता  
 मेरा नाम मुझे है घाशा  
 होता घंसा ही घण्डा-सा  
 विश्वसेन या देवदत्त  
 वनुभूति, कि ऐया ही बोई





छंद स्रग्धरा या मालिनि में  
 बना प्रिया की नख-शिख स्तुति में  
 रच देता दो चार पोथियाँ  
 मैं भी तो छोटी मोटी

शोध श्लोक-रचना समाप्त कर गृह की ओर गमन करता  
 मैं भी उस नवरत्न सभा में एक ओर बैठा रहता  
 काश कि जो मैं जन्मा होता कालिदास के स्वर्ण काल में  
 बँध जाता मैं न जाने किस मालविका के रूप जाल में

किसी भदन उल्लासोत्सव में  
 धेणु मुरज वीणा कलरव में  
 गंध अंध मंजरित कुंज वन  
 के प्रति गोपन अंतराल में  
 किसी फाल्गुनी शुक्ल निशा में  
 यौवन की उद्दाम दशा में  
 किसी सुन्दरी से हो जाती  
 भेंट नृपति की चित्रशाल में

रुक जाती वह धन से घाँघल घटका कर सहकार डाल में  
 काश कि जो मैं जन्मा होता कालिदास के स्वर्ण काल में

हाय कहाँ है भोले कवि, प्रथ  
 कालिदास का काल रे  
 पंडितजन, करते विवाद है  
 लेकर तिथि, मिति, सात्र रे  
 बीन गया वह सकल धरद है  
 इतिवृत्त हो गया स्तब्ध है



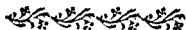
जो भी गया, उसे जाने दो  
 मिथ्या है यह कोलाहल  
 किन्तु उसी के साथ गई, हा,  
 उस दिन की वे पौर नारियाँ  
 कहीं चतुरिका मालविका का  
 घोर निपुणिका का वह दल

कौन स्वर्ग ले गया मर्त्य से वरमाला का थाल रे ?  
 हाय, कहीं है, भोले कवि, भव कालिदास का काल रे ?

जिनके साथ न हुआ मिलन भी  
 वे पृथ्वी की सुरांगना  
 चिर विच्छेद व्यथा से मुझको  
 बना रही हैं अन्यमना  
 तब भी मन में यह प्रबोध है  
 वैसा ही वकुल प्रमोद है  
 यद्यपि उसे नहीं मिल पाता  
 नारी मुख-मद का छोटा  
 फागुन में अशोक छाया में  
 अलस प्राण, सलस काया में  
 भव भी है वातास दक्षिणी  
 लगता वैसा ही भीठा

मिलती है सांत्वना विविध विधि, होता है मैं शांत मना ।  
 यद्यपि भव इस मर्त्यलोक में रही नहीं वे सुरांगना

पर इस क्षण जो वर्तमान है  
 इसी मर्त्य नरलोक में



अच्छी लगती इनकी छवि यदि  
 कवि गुरु इन्हें विलोकते  
 सभी सूँट मोजे हैं पहने  
 और चाल के तो क्या कहने  
 रंग डंग हैं सभी विदेशी  
 यातचीत में चाल में  
 किन्तु यही भव भी कटाक्ष है  
 नयन कोण दे रहा साध्य है  
 जो कटाक्ष देखा जाता था  
 कालिदास के काल में

में न मरूँगा अरे निपुणिका-मालविका के शोक में  
 अन्य नाम से वर्तमान वे सभी इसी भू लोक में ।

अतः धूमता इसी गर्व से मत्त  
 हूँ उन्माद में  
 मैं जीवित सशरीर, शेष है  
 कालिदास तो याद में  
 उनके युग का स्वाद गंध सब  
 मिलता मुझको मुदुल मंद भव  
 पर न महाकवि को मिल पाया  
 इस युग का किंचित कण भी  
 वेणी लहरा, डाल मोहिनी  
 चलतीं आधुनिका विनोदिनी  
 कर सकते थे कहीं महाकवि  
 इनका कल्पित चित्तन भी

प्रिये तुम्हारी प्रणय दृष्टि का पाकर तरुण प्रसाद मैं ।  
 कालिदास को हरा, गर्व से फिरता हूँ उन्माद में ॥

## बन्दी तीर



पंचनद तीर  
वेणी का छूट बांध  
पल में गुरु-मंत्र से  
जाग उठे सिक्ख  
निर्मम निर्भोक ।  
हो उठा प्रतिध्वनित  
जल-घल में चतुर्दिक  
सहस्रों कठों से  
'गुरुजी की जय'  
जाग उठे सोए सिक्ख ।  
जागृति की बेला में  
नवोदित सूर्य को  
देखा अनिमेष ।  
'मलख निरंजन'  
टूट गए बंधन  
जय के निर्घोष का  
नम व्यापी कम्पन  
करता भय भंजन ।



वक्ष पास, सोल्लास  
 बजती भसि भन-भन ।  
 भासमान लरज उठा ।  
 पंचनद गरज उठा  
 'भलख निरंजन'

फिर वह भी भाषा दिन  
 पांच नदियों के पुण्य-  
 पावन दस तीरों पर  
 धिर-धिर कर जुड़ भाए  
 निदंन्द मुक्त उच्छ्रण  
 सक्ष प्राण शंकाहीन  
 धित्त भावना विहीन  
 या जिनके जीवन का  
 एक ध्येय एक सरय  
 'जीवन क्या, मृत्यु क्या  
 दोनों ही मनुष्य मृत्यु'  
 उधर, दूर दिल्ली के  
 महलों में हरमों में  
 बारबार बादशाह्वाशों  
 की मोठी नींद  
 उषट-उषट आती थी ।  
 जिनके उदर कठ  
 धनने जय-धाय मे  
 तोड़ कर नीरवता  
 निविड़ निरीष को  
 करते नम संयत हैं ।

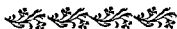


किनके प्रोज्वल मशाल  
करते हैं दीप्त  
बह्नि किरणों से धध-भाल ।

पंचनद तीर पर  
मुक्त हुई है क्या  
गुरु भक्तों की रक्त लहर ।  
लक्ष-लक्ष वक्ष धीर '   
दल के दल प्राण भाज  
विहग तुल्य हो अधीर  
छूट चले व्याकुल हो  
जैसे निज नौइों को ।  
जननी के भाल पर  
हपित हो रक्त-तिलक  
किया वहाँ वीरो ने  
पंचनद तीर पर ।  
मुगलों के, सिक्खों के  
इस दुरंत रण में  
मरणालिगन में  
गुंथ गए ताल ठोक  
परस्पर दोनों पक्ष  
दंशन-क्षत श्मेन-विहग  
छूक रहा जैसे हो  
मारी भुजंग से ।  
उस दिन समर में  
'जय, गुरुजी की जय'

हुंकारे सिक्ख वीर  
मत्त मुगल रक्त कृपित  
दीन, होन गरजे ।

गुरुदासपुर गढ़ में  
सूरानो सेना के हाथों  
प्रभु का प्यारा  
बंदा जब बंदी हुआ  
सिंहवत शृंखलागत  
बांधकर ले जाया गया  
नगर दिल्ली में ।  
भाग्ये चला मुगल सैन्य  
भालों की नोंकों में—  
छिन्न सिक्ख मुंड टांक  
पथ में उड़ाता घूल ।  
पीछे चले आते थे  
सिक्ख सात सौ, जिनकी  
खन् खन् खन् बज  
उठती थीं लोह-जंजीरें ।  
राज-पथ पर घा समाता नहीं  
जन-समूह ।  
खुल गए झरोखे थे—  
गरजे सिख, 'गुरु की जय'  
प्राणों का भय भूल ।  
मुगलों का, सिक्खों का  
दोनों का सैन्य-दल  
चला धाज दिल्ली के



पथ में उड़ाता घूल ।  
 होड़-सी मची थी  
 कौन करे प्रथम प्राणदान ।  
 बलि के लिए मची थी  
 आपस में खींचतान ।  
 प्रति दिवस प्रातःकाल  
 'जय, गुरुजी की जय'  
 पुकार कर शत-वीर  
 वधिका-जनों के हाथों  
 पंक्ति-बद्ध क्रम-क्रम से  
 करते थे शीघ्र दान ।  
 इसी भाँति सप्ताहार्त  
 सप्तशत प्राणों के  
 निःशेष होने पर  
 बंदा की गोद में  
 काजी ने रक्ष दिया  
 बंदा का एक लाल  
 और कहा, 'तुमको वध  
 इसका करना होगा  
 अपने ही हाथों, बिना  
 सहमे या भिम्भके ।'  
 कह कर यों पटक दिया  
 उस नीनिहाल को  
 भाई के साल की  
 जो या शृंखलाबद्ध-  
 बन्दा की गोद में ।





कुछ न कहा मुख से,  
 बंदा ने धीरे से  
 नन्हें से लाल को  
 लगा लिया वक्ष से ।  
 दाए भर, फिर, मस्तक पर  
 रखता निज दक्षिण कर  
 सिर्फ एक बार चूमा  
 उसके उष्णीश को ।  
 और फिर धीरे से  
 लेकर कटार त्वरित  
 अपने कटि बंध से  
 बालक का मुख निहार  
 कहे बस यही शब्द  
 चुपके से कान में  
 'जय, गुरुजी की जय,  
 नहीं पुत्र कोई भय'  
 उस किशोर मानन पर  
 पल भर को दीप्त हुई  
 अभयकिरण सौत्साह  
 काँप उठा समातल  
 कोमल, पर, भोजस्वी  
 उस किशोर-कंठ से  
 बंदा का मुख निहार  
 बालक उठा पुकार  
 'गुरु जी की जय !  
 नहीं कुछ भय !'



## श्रेष्ठ भिक्षा

[ भवदान शतक ]



भिक्षा प्रभु बुद्ध हेतु शिष्य भाज मांग रहा  
 कोन पुरवासो, इस बेला, है जाग रहा  
 यों मनाय पिडक ने कहा सिन्धु-स्वन में  
 प्राची के भांगन में सद्योदित बालारुण  
 खोल रहा था सासस, सस्मित अर्कणम लोचन  
 यावन्ती सौधों की झोट में, गगन में ।  
 वेतालिक दल भी मभी था प्रगाढ़ निद्रा-स्तीन  
 गुरु मभी तक था हुषा मांगलिक गान भीन  
 दुविधायुत स्वरों में पिक ने छेड़ी मृदु कृहू तान  
 भिक्षु यों पुकार उठा 'निद्रारत हे पुरत्रन !  
 भिक्षा दो, करो दूर संज्ञा का सम्मोहन'  
 मुप्य परित्रन, यह मुन, सिहर, हुए कम्पमान  
 शोन उठे साधु, मुनो, वर्षा के मेघ मदप  
 देते हैं नवजीवन जग को, कर नित्र को दाप,  
 त्याग सद्गुण धर्मों का सार है मुदन में'



कैलाश पर्वत के शिखरों से दूरागत  
मंद गुरु गंभीर भैरव संगीतवत  
गूँजी वह वाणी सुख-तंद्रिल भवन में ।

राजा ने जागकर, सोचा, बूधा राज्य-धन  
सोचा गृहस्थी ने, तुच्छ मिथ्या यह आयोजन  
अथु धकारण करती विसर्जन बालाएँ  
जो कि विकल हृदया थीं ललित सुख-विलास-लीन  
सगता हो जैसे गत यामिनि की छवि-विहीन  
स्खलित दलित शुष्क कामिनी की म्लान मालाएँ ।

खुल गए घातायन, गली-गली घर-घर  
निद्रा हुई भंग, नयन भाँक रहे स्तर-स्तर  
कौतुक से अंधियारे पथ में रहे निहार  
जागो, रे जागो, दो भिक्षा यही छेड़ टेक  
निद्राहीन दृग से सुप्त सीधो की घोर देख  
शून्य राज-पथ में है चलते भिक्षुक पुकार ।  
फँक रहे पथ में धनिक धनिकाएँ सत्वर  
रत्न-मणि-माणिक-कणिकाएँ मुष्टि भर-भर  
कोई तो मस्तक मणि कोई तो कंठहार  
साते हैं धनिक स्वर्ण घाल भर-भर कर  
दूर पड़े रहते, साधु डालते नहीं नजर  
कहते, दो भीख, जो कि प्रभु को हो अंगीकार ।

बसन घोर भूषण से ढक गयी धरती  
कनक रत्न बिजली है बकाशीय करती  
भोली से, शून्य, मिथु कहते पुरजन ने

पोरजन कान खोल, करो सब भवधान  
 भिक्षु थ्रेष्ठ जो हैं तदागत बुद्ध भगवान  
 दो उन्हें तुम्हारी सर्व थ्रेष्ठ निधि जतन से' ।

लौट गए राजा और लौट गए नगर सेठ  
 प्रभु के उपयुक्त किन्तु मिली नहीं कोई भेंट  
 नगरी विशाल हुई लज्जा से नत आनन

चटक उठी धूप और जाग उठा सारा देश  
 महानगरी का हुआ दीर्घ पथ निःशेष  
 साधु ने किया प्रवेश कानन में आकुल मन ।

एक दीन नारी थी भूतल करती पयन  
 अंगों पर उसके थे नहीं वसन आभूषण  
 धाकर वह नमित हुई साधु-पद-कमल में

रह कर अरण्य अंतराल में किसी प्रकार  
 एक मात्र वस्त्र खंड गात से लिया उतार  
 बाहु बड़ा, फेंक दिया पथ में, भूतल में ।

भिक्षु ऊर्ध्व-भुज से तब कर उठा जयनाद  
 'धन्य धन्य मातः, धन्य, स्वस्ति, आशीर्वाद  
 साध महाभिक्षुक की पूरी की पल में'

चल दिया संन्यासी नगरी को तज कर  
 छिन्न वह चीर-खंड धर कर निज सिर पर  
 भेंटने को उसे बुद्ध पद-नख-छवि-तल में ।

## प्रार्थनातीत दान



जब पठान बांध कर लाए बंदी सिख बल ।  
हुमा शहीदगंज में, रक्तिम धरणी का तल ।

तब नवाब ने कहा, 'सुनो, तरसिंह वीरवर  
उपकृत करना चाह रहे हम तुम्हें क्षमा कर ।'

यों नवाब को दिया वीरवर ने प्रत्युत्तर,  
'हुई मुभी पर है इतनी धनुकम्पा क्यों कर ।'

'तुम हो वीर, इसीसे तुम पर क्रोध नहीं है  
केश फाट कर दे दो, बस अनुरोध यही है ।'

'इस करुणा, इस कृपा हेतु धिर-ऋणी रहूंगा ।  
मांगे से भी अधिक, केश संग शिर भी दूंगा ।'









